दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

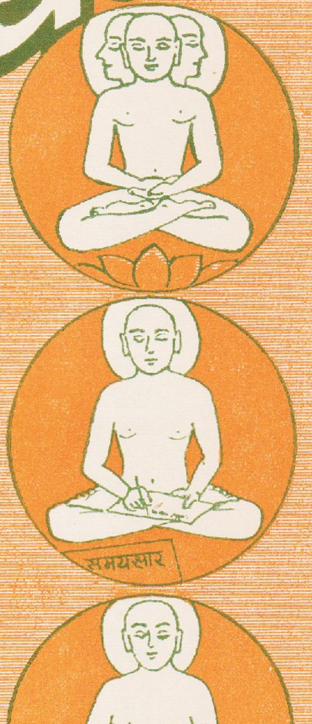

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (गुजरात) का मुखपत्र

लाख बात की बात यही,
निश्चय उर लावो।
तोरि सकल जग दंद-फंद,
निज आतम ध्यावो ॥

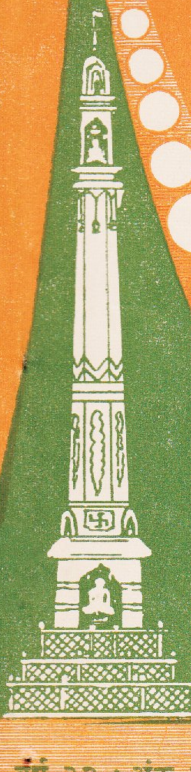

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३२ : अंक २ [३७४] अगस्त, १९७६

आत्मधर्म [३७४]

[शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक]

संपादक :

डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :

अखिल बंसल

कार्यालय :

श्री टोडरमल स्मारक भवन

ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :

आजीवन	:	१०१ रुपये
वार्षिक	:	६ रुपये
एक प्रति	:	५० पैसे

मुद्रक :

सोहनलाल जैन

जयपुर प्रिण्टर्स

जयपुर

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३२ [३७४] अंक : २

जब आतम अनुभव आवै,
तब और कछु ना सुहावै।
रस नीरस हो जात ततक्षिण,
अच्छ विषय नहीं भावै॥जब०॥

गोष्ठी कथा कुतूहल विघटै,
पुद्‌गल प्रीति नशावै।
राग दोष जुग चपल पक्षयुत,
मनपक्षी मर जावै॥जब०॥

ज्ञानानन्द सुधारस उमगै,
घट अन्तर न समावै।
'भागचंद' ऐसे अनुभव को,
हाथ जोरि शिर नावै॥जब०॥

जाग! जाग रे जाग!!

अनादि काल से मोह नींद में सोते हुए प्राणियों को जगाते हुए पूज्य गुरुदेव कहते हैं :-

जाग! जाग रे जाग!! प्रातः हो गया है, अब रात्रि कहाँ जो तू इसप्रकार अचेत सो रहा है – जिसप्रकार किसी को भयंकर विषधर सर्प ने डस लिया हो और कोई गारुड़ी (मंत्रशास्त्री) ऐसा बलवत्तर मंत्र फैंके कि वह सर्प बिल में से बाहर आकर उस काटे हुए मनुष्य का विष चूस ले।

उसीप्रकार चैतन्य प्रभु को अनादि काल से अज्ञानरूपी महाविष चढ़ रहा है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य उसे जागृत करते हुए कहते हैं कि हे चेतन! तू जाग! जाग रे जाग!! यह 'समयसार' के दैवी मंत्र तेरे शुद्धात्मस्वरूप को दिखाकर अनादि काल से चढ़े हुए विष को उतार देंगे। अब सोने का समय नहीं है।

जाग! जाग रे जाग!! अपने चैतन्य को देख।

सम्पादकीय

दशलक्षण महापर्व

एक विश्लेषण

पर्वों की चर्चा जब भी चलती है, तब-तब उनका संबंध प्रायः खाने-पीने और खेलने से जोड़ा जाता है - जैसे रक्षाबंधन के दिन खीर और लड्डू खाये जाते हैं, भौंरे खेले जाते हैं, राखी बाँधी जाती है; होली के दिन अमुक पकवान खाये जाते हैं, रंग डाला जाता है, होली जलाई जाती है; दीपावली के दिन पटाखे चलाए जाते हैं, दीपक जलाए जाते हैं, लड्डू चढ़ाये जाते हैं एवं अमुक पकवान खाये जाते हैं, आदि।

पर अष्टाह्निका और दशलक्षण जैसे जैन पर्वों का संबंध खाने और खेलने से न होकर खाना और खेलना त्यागने से होता है। ये भोग के नहीं, त्याग के पर्व हैं; इसीलिए महापर्व हैं। इनकी महानता त्याग के कारण है, आमोद-प्रमोद के कारण नहीं।

आप किसी भी जैन से पूछिये कि दशलक्षण महापर्व कैसे मनाया जाता है तो वह यही उत्तर देगा कि इन दिनों लोग संयम से रहते हैं, पूजन-पाठ करते हैं, व्रत-नियम-उपवास रखते हैं, हरित पदार्थों का सेवन नहीं करते। स्वाध्याय और तत्त्वचर्चा में ही अधिकांश समय बिताते हैं। सर्वत्र बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा शास्त्र सभाएँ होती है, उनमें उत्तम क्षमादि दशधर्मों का स्वरूप समझाया जाता है। सभी लोग कुछ न कुछ विरक्ति धारण करते हैं, दान देते हैं, आदि अनेक प्रकार के धार्मिक कार्यों में संलग्न रहते हैं। सर्वत्र एक प्रकार से धार्मिक वातावरण बन जाता है।

पर्व दो प्रकार के होते हैं - (१) शाश्वत और (२) सामायिक, जिन्हें हम त्रैकालिक और तात्कालिक भी कह सकते हैं।

तात्कालिक पर्व भी दो प्रकार के होते हैं - (१) व्यक्ति विशेष से संबंधित और (२) घटना विशेष से संबंधित।

दीपावली, महावीर जयंती, रामनवमी, जन्माष्टमी आदि पर्व व्यक्ति विशेष से संबंध रखनेवाले पर्व हैं, क्योंकि दीपावली और महावीर जयंती क्रमशः महावीर के निर्वाण और जन्म से संबंध रखती हैं और रामनवमी और जन्माष्टमी राम और कृष्ण के जन्म से संबंधित है।

घटना विशेष से संबंधित पर्वों में रक्षाबंधन, अक्षयतृतीया, होली आदि पर्व आते हैं, क्योंकि ये प्रसिद्ध पौराणिक घटनाओं से संबंध रखनेवाले पर्व हैं। ऐतिहासिक घटनाओं से संबंधित आज के राष्ट्रीय पर्व – स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस कहे जा सकते हैं।

त्रैकालिक अर्थात् शाश्वत पर्व न तो किसी व्यक्ति विशेष से संबंधित होते हैं, और न घटना विशेष से; वे तो आध्यात्मिक भावों से संबंधित होते हैं। दशलक्षण महापर्व एक ऐसा ही त्रैकालिक शाश्वत् पर्व है जो आत्मा के क्रोधादि विकारों के अभाव के फलस्वरूप प्रगट होनेवाले उत्तम क्षमादि भावों से संबंध रखता है।

घटनाओं और व्यक्ति विशेष से संबंधित पर्व निश्चितरूप से अनादि नहीं हो सकते, क्योंकि वे संबंधित घटना या व्यक्ति से पूर्व संभावित नहीं हैं। वे अनंत भी नहीं हो सकते, क्योंकि जब भविष्य में कोई इनसे भी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति उत्पन्न हो जायेगा या घटना घट जायेगी तो जगत उसे याद रखने लगेगा, उससे संबंधित पर्व मनाने लगेगा, इन्हें भूल जायेगा। अगले तीर्थंकर उत्पन्न होने पर भविष्य में उनकी जयंती और निर्वाण-दिवस मनाया जायेगा, इनका नहीं। जिसप्रकार हम भूतकाल की चौबीसी को भूल से बैठे हैं, उसीप्रकार भविष्य इन्हें भी याद नहीं रख पावेगा।

घटनाएँ और व्यक्ति कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों, वे सार्वभौम और सार्वकालिक नहीं हो सकते। उन सबकी अपने-अपने क्षेत्र और काल संबंधी सीमाएँ हैं, वे असीम नहीं हो सकते। अत: वे ही पर्व सार्वभौम और सार्वकालिक हो सकते हैं, जो किसी व्यक्ति विशेष या घटना विशेष से संबंधित न होकर सभी जीवों से, उनके भावों से, समानरूप से संबंधित हों। दशलक्षण महापर्व एक ऐसा ही महान पर्व है जो सब जीवों के

भावों से समानरूप से संबंधित है। यही कारण है कि वह शाश्वत है, सबका है, और सदा रहेगा। उसकी उपयोगिता सार्वभौमिक और सार्वकालिक है।

दशलक्षण महापर्व सम्प्रदाय विशेष का नहीं, सबका है। भले ही उसे मात्र सम्प्रदाय विशेष के लोग क्यों न मनाते हों, पर वह साम्प्रदायिक पर्व नहीं है, क्योंकि वह साम्प्रदायिक भावनाओं पर आधारित पर्व नहीं है। उसका आधार सार्वजनिक है। विकारी भावों का परित्याग एवं उदात्त भावों का ग्रहण ही उसका आधार है, जो सभी को समानरूप से हितकारी है। अतः यह पर्व मात्र जैनों का नहीं, जन-जन का पर्व है। इसे सम्प्रदाय विशेष का पर्व मानना स्वयं साम्प्रदायिक दृष्टिकोण है।

यह सबका पर्व है, इसका एक कारण यह भी है कि सभी प्राणी सुखी होना चाहते हैं और दुःख से डरते हैं। क्रोधादि भाव दुःख के कारण हैं और स्वयं दुःखस्वरूप हैं एवं उत्तम क्षमादि भाव सुख के कारण हैं और स्वयं सुखस्वरूप हैं। अतः दुःख से डरनेवाले सभी सुखार्थी जीवों को क्रोधादि के त्यागरूप उत्तम क्षमादि दश धर्म परम आराध्य हैं। सभी को सुखकर और सन्मार्गदर्शक होने से यह सभी का पर्व है।

क्रोधादि विभाव भावों के अभावरूप उत्तम क्षमादि दश धर्मों का विकास ही जिसका मूल है, ऐसे दशलक्षण महापर्व की सार्वभौमिकता का आधार यह है कि सर्वत्र ही क्रोधादिक को बुरा, अहितकारी और क्षमादि भावों को भला और हितकारी माना जाता है। ऐसा कौनसा क्षेत्र है, जहाँ क्रोधादि को बुरा और क्षमादि को अच्छा न माना जाता हो ?

सर्व सार्वकालिक भी इसी कारण है, क्योंकि कोई काल ऐसा नहीं कि जब क्रोधादि को हेय और उत्तम क्षमादि को उपादेय न माना जाता रहा हो, न माना जाता हो, और न माना जाता रहेगा। अर्थात् सर्व कालों में इसकी उपादेयता असंदिग्ध है। भूतकाल में भी क्रोधादि से दुःख व अशांति तथा क्षमादि से सुख व शांति की प्राप्ति होती देखी गई है, वर्तमान में भी देखी जाती है, और भविष्य में भी देखी जायेगी।

उत्तम क्षमादि धर्मों की सार्वभौमिक त्रैकालिक उपयोगिता एवं सुखकरता के कारण ही दशलक्षण महापर्व शाश्वत पर्वों में गिना जाता है और इसी कारण यह महापर्व है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि यह महापर्व त्रैकालिक है, अनादि-अनंत है, तो फिर इसके आरंभ होने की कथा शास्त्रों में क्यों आती है? शास्त्रों में आता है कि :-

"कालचक्र के परिवर्तन में कुछ स्वाभाविक उतार-चढ़ाव आते हैं, जिन्हें जैन परिभाषा में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के नाम से जाना जाता है। अवसर्पिणी में क्रमशः ह्रास और उत्सर्पिणी में क्रमशः विकास होता है। प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में छह-छह काल होते हैं।

प्रत्येक अवसर्पिणी काल के अंत में जब पंचम काल समाप्त और छठा काल आरंभ होता है, तब लोग अनार्यवृत्ति धारण कर हिंसक हो जाते हैं। उसके बाद जब उत्सर्पिणी आरंभ होती है और धर्मोत्थान का काल पकता है, तब श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से सात सप्ताह (४९ दिन) तक विभिन्न प्रकार की बरसात होती है, जिसके माध्यम से सुकाल पकता है और लोगों में पुनः अहिंसक आर्यवृत्ति का उदय होता है। एक प्रकार से धर्म का उदय होता है, आरंभ होता है, और उसी वातावरण में दश दिन तक उत्तम क्षमादि दश धर्मों की विशेष आराधना की जाती है तथा इसी आधार पर हर उत्सर्पिणी में यह महापर्व चल पड़ता है।"

यह कहा तो मात्र यह बताती है कि प्रत्येक उत्सर्पिणी काल में इस पर्व का पुनरारम्भ कैसे होता है। इस कथा से दशलक्षण महापर्व की अनादि-अनंतता पर कोई आँच नहीं आती।

यह कथा भी तो शाश्वत कथा है जो अनेक बार दुहराई गई है और दुहराई जायेगी। क्योंकि अवसर्पिणी के पंचम काल के अंत में जब-जब लोग इन उत्तम क्षमादि धर्मों से अलग हो जायेंगे और उत्सर्पिणी के प्रारंभ काल में जब-जब इसकी पुनरावृत्ति होगी, तब-तब उस युग में दशलक्षण महापर्व का इस तरह आरंभ होगा। वस्तुतः यह युगारंभ की चर्चा है, पर्वारंभ की नहीं। यह अनादि से अनेक युगों तक इसीप्रकार आरंभ हो चुका है और भविष्य में भी होता रहेगा।

इसकी अनादि-अनंतता शास्त्र-सम्मत तो है ही, युक्तिसंगत भी है। क्योंकि जब

से यह जीव है, तभी से यद्यपि क्षमादि स्वभावी है, तथापि प्रगटरूप (पर्याय) में क्रोधादि विकारों से युक्त भी तभी से है। इसी कारण ज्ञानानंदस्वभावी होकर भी अज्ञानी और दुःखी है। जब से यह दुःखी है; सुख की आवश्यकता भी तभी से है। चूँकि सभी जीव अनादि से हैं, अतः सुख के कारण उत्तम क्षमादि धर्मों की आवश्यकता भी अनादि से ही रही है।

इसी प्रकार यद्यपि अनंत आत्माएँ क्षमादि स्वभावी आत्मा का आश्रय लेकर क्रोधादि से मुक्त हो चुकी हैं, तथापि उनसे भी अनंतगुणी आत्माएँ अभी भी क्रोधादि विकारों से युक्त हैं, दुःखी हैं; अतः आज भी इन धर्मों की आराधना की पूरी-पूरी आवश्यकता है तथा सुदूरवर्ती भविष्य में भी क्रोधादि विकारों से युक्त दुःखी आत्माएँ रहनेवाली हैं, अतः भविष्य में भी इनकी उपयोगिता असंदिग्ध है।

तीन लोक में सर्वत्र ही क्रोधादि दुःख के और क्षमादि सुख के कारण है। यही कारण है कि यह महापर्व शाश्वत् अर्थात् त्रैकालिक और सार्वभौमिक है। सबका है। भले ही सब इसकी आराधना न करें, पर यह अपनी प्रकृति के कारण सबका है, सबका था, और सबका रहेगा।

यद्यपि अष्टाह्निका महापर्व के समान यह भी वर्ष में तीन बार आता है - (१) भादों सुदी ५ से १४ तक, (२) माघ सुदी ५ से १४ तक, व (३) चैत्र सुदी ५ से १४ तक; तथापि सारे देश में विशालरूप में बड़े उत्साह के साथ मात्र भादों सुदी ५ से १४ तक ही मनाया जाता है। बाकी दो को तो बहुत से जैन लोग भी जानते तक नहीं हैं। प्राचीन काल में बरसात के दिनों में आवागमन की सुविधाओं के पर्याप्त न होने से व्यापारादि कार्य सहज ही कम हो जाते थे तथा जीवों की उत्पत्ति भी बरसात में बहुत होती है। अहिंसक समाज होने से जैनियों के साधुगण तो चार माह तक गाँव से गाँव भ्रमण बंद कर एक स्थान पर ही रहते थे। श्रावक भी बहुत कम भ्रमण करते थे। अतः सहज ही सत्समागम एवं समय की सहज उपलब्धि ही विशेष कारण प्रतीत होते हैं - भादों में ही इसके विशाल पैमाने पर मनाए जाने के।

वैसे तो प्रत्येक धार्मिक पर्व का प्रयोजन आत्मा में वीतरागभाव की वृद्धि करने का

ही होता है, किन्तु इस पर्व का संबंध विशेषरूप से आत्म-गुणों की आराधना से है। अतः यह वीतरागी पर्व संयम और साधना का पर्व है।

पर्व अर्थात् मंगल काल, पवित्र अवसर। वास्तव में तो अपने आत्मस्वभाव की प्रतीतिपूर्वक वीतरागी दशा का प्रगट होना ही यथार्थ पर्व है, क्योंकि वही आत्मा का मंगलकारी है और पवित्र अवसर है।

धर्म तो आत्मा में प्रगट होता है, तिथि में नहीं; किंतु जिस तिथि में आत्मा में क्षमादि रूप वीतरागी शांति प्रगट हो, वही तिथि पर्व कही जाने लगती है। धर्म का आधार तिथि नहीं, आत्मा है।

आत्मस्वरूप की प्रतीतिपूर्वक चारित्र (धर्म) की दश प्रकार से आराधना करना ही दशलक्षण धर्म है। आत्मा में दश प्रकार के सद्भावों (गुणों) के विकास से संबंधित होने से ही इसे दशलक्षण महापर्व कहा जाता है।

अनादिकाल से ही प्रत्येक आत्मा, आत्मा में ही उत्पन्न, आत्मा के ही विकार - क्रोध, मान, माया, लोभ, असत्य, असंयम आदि विकारों, दुर्गुणों के कारण ही दुःखी और अशांत रहता आया है। अशांति और दुख मेटने का एक मात्र उपाय आत्माराधना है। आत्मस्वभाव को जानकर, मानकर, उसी में जम जाने से, उसी में समा जाने से, अतीन्द्रिय आनंद और सच्ची शांति की प्राप्ति होती है। ऐसे ही आत्माराधक व्यक्ति के हृदय में उत्तम क्षमादि गुणों का सहज विकास होता है। अतः यह स्पष्ट है कि उक्त पर्व का संबंध आत्माराधना से है - प्रकारांतर से उत्तम क्षमादि दश गुणों की आराधना से है।

क्षमादि दश गुणों को दश धर्म भी कहते हैं। ये दश धर्म है - (१) उत्तम क्षमा (२) उत्तम मार्दव (३) उत्तम आर्जव (४) उत्तम सत्य (५) उत्तम शौच (६) उत्तम संयम (७) उत्तम तप (८) उत्तम त्याग (९) उत्तम आकिंचन और (१०) उत्तम ब्रह्मचर्य।

ये दश धर्म नहीं, धर्म के दश लक्षण हैं, जिन्हें संक्षेप में दशधर्म शब्दों से भी अभिहित कर दिया जाता है। जिस आत्मा में आत्म-रुचि, आत्म-ज्ञान और आत्म-

लीनता रूप धर्म पर्याय प्रगट होती है, उसमें धर्म के ये दश लक्षण सहज प्रगट हो जाते हैं। ये आत्माराधन के फलस्वरूप प्रगट होनेवाले धर्म हैं, लक्षण हैं, चिह्न हैं।

यद्यपि उक्त दश धर्म चारित्र गुण की निर्मल पर्यायें हैं, तथापि प्रत्येक के साथ लगा हुआ उत्तम शब्द सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की अनिवार्य सत्ता को सूचित करता है। तात्पर्य यह है कि ये चारित्र गुण की निर्मल दशाएँ सम्यग्दृष्टि ज्ञानी आत्मा को ही प्रगट होती हैं, अज्ञानी मिथ्यादृष्टि को नहीं।

वस्तुतः चारित्र ही साक्षात् धर्म है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान तो चारित्ररूप वृक्ष की जड़ें (मूल) हैं। जैसे वृक्ष जड़ के बिना खड़ा नहीं रह सकता, पनप नहीं सकता, अथवा जड़ के बिना जैसे वृक्ष की एक प्रकार से सत्ता ही संभव नहीं है; उसीप्रकार सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूप जड़ के बिना सम्यक्चारित्ररूपी वृक्ष खड़ा ही नहीं रह सकता, पनप नहीं सकता, अथवा इन दोनों के बिना सम्यक्चारित्र की सत्ता की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

यद्यपि लोक में बहुत से लोग आत्म-श्रद्धान और आत्म-ज्ञान के बिना भी बंधन के भय एवं स्वर्ग-मोक्ष तथा मान-प्रतिष्ठा आदि के लोभ से क्रोधादि कम करते या नहीं करते से देखे जाते हैं, तथापि वे उत्तम क्षमादि दश धर्मों के धारक नहीं माने जा सकते हैं। इस संबंध में महापंडित टोडरमलजी के विचार दृष्टव्य हैं:-

"तथा बंधादिक के भय से अथवा स्वर्ग-मोक्ष की इच्छा से क्रोधादि नहीं करते परंतु वहाँ क्रोधादि करने का अभिप्राय तो मिटा नहीं है - जैसे कोई राजादिक के भय से अथवा महंतपने के लोभ से परस्त्री का सेवन नहीं करता, तो उसे त्यागी तो नहीं कहते। वैसे ही यह क्रोधादिक का त्यागी नहीं है। तो कैसे त्यागी होता है? पदार्थ अनिष्ट-इष्ट भासित होने से क्रोधादिक होते हैं। जब तत्त्वज्ञान के अभ्यास से कोई इष्ट-अनिष्ट भासित न हो, तब स्वयमेव ही क्रोधादि उत्पन्न नहीं होते, तब सच्चा धर्म होता है।"

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक क्रोधादि का नहीं होना ही उत्तम क्षमादि धर्म है।

यद्यपि उक्त दश धर्मों का वर्णन शास्त्रों में जहाँ–तहाँ मुनि धर्म की अपेक्षा किया गया है, तथापि ये धर्म मात्र मुनियों को धारण करने के लिये नहीं हैं, गृहस्थों को भी अपनी–अपनी भूमिकानुसार इन को अवश्य धारण करना चाहिए। धारण क्या करना चाहिए, वस्तुत: बात तो ऐसी है कि ज्ञानी गृहस्थ के भी अपनी–अपनी भूमिकानुसार ये होते ही हैं, इनका पालन सहज पाया जाता है।

तत्त्वार्थसूत्र में गुप्ति, समिति, अनुप्रेक्षा (बारह भावना) और परीषहजय के साथ दश धर्मों की चर्चा है। ये सब मुनि धर्म से संबंधित विषय हैं। यही कारण है कि जहाँ–जहाँ इनका वर्णन मिलता है, उसका उत्कृष्ट रूप का ही वर्णन मिलता है। इससे आतंकित होकर सामान्य श्रावकों द्वारा इनकी उपेक्षा संगत नहीं है।

यदि मुनियों को अनंतानुबंधी आदि तीन कषायों के अभावरूप उत्तम क्षमादि धर्म होंगे तो पंचम गुणस्थानवर्ती ज्ञानी श्रावकों के अनंतानुबंधी आदि दो कषायों के अभावरूप उत्तम क्षमादि धर्म होंगे। इसीप्रकार चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि के एकमात्र अनंतानुबंधी कषाय के अभावरूप धर्म उत्तमक्षमादि प्रगट होंगे। मिथ्यादृष्टि के उत्तम क्षमादि धर्म नहीं होते। उसकी कषायें कितनी भी मंद क्यों न हों, उसके उक्त धर्म प्रगट नहीं हो सकते, क्योंकि उक्त धर्म कषाय के अभाव से प्रगट होनेवाली पर्यायें हैं, मंदता से नहीं। मंदता से जो तारतम्यरूप भेद पड़ता है, उन्हें शास्त्रों में लेश्या संज्ञा दी है, धर्म नहीं। धर्म मिथ्यात्व और अकषाय के अभाव का नाम है, मंदता का नहीं।

इन धर्मों की व्याख्या अनेक पहलुओं (दृष्टिकोणों) से संभव है। जैसे, मुनियों और श्रावकों की अपेक्षा, निश्चय और व्यवहार की अपेक्षा, अंतर और बाह्य की अपेक्षा आदि।

इनमें से प्रत्येक धर्म स्वतंत्ररूप से विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा रखता है। अत: भविष्य में जब प्रत्येक पर विस्तार से चर्चा करेंगे, तब इन सबका विशेष स्पष्टीकरण सहज संभव होगा।

निज शुद्धात्मा को जानने से सच्चा ज्ञान और सच्चा सुख होता है।

आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथाधिराज समयसार की आत्मख्याति टीका के कर्ता आचार्य अमृतचंद्र के मंगलाचरण 'नमः समयसाराय' आदि कलश का अर्थ समझाते हुए स्वामीजी कहते हैं :-

समय अर्थात् जीवादि पदार्थ, उनमें सार अर्थात् उपादेय ऐसा त्रिकाली शुद्ध जीवतत्त्व। उपादेय कौन ? – शुद्ध जीव ही उपादेय है। किसको उपादेय है ? पर्याय में शुद्ध आत्मा उपादेय है। उपादेय तत्त्व स्वयं उपादेय नहीं होता, पर्याय में शुद्ध जीवतत्त्व उपादेय है, पर्याय ध्रुव को स्वीकार करती है।

त्रिकाली शुद्ध आत्मा को पर्याय ने स्वीकार किया, वहाँ उसे नमस्कार आ गया। विकल्प से 'शुद्ध आत्मा को नमस्कार करता हूँ' ऐसा नहीं है, परंतु परमार्थतः मैं स्वयं ही इष्टदेव शुद्धात्मा हूँ – ऐसा पर्याय में स्वीकार करना उसे नमस्कार किया कहा जाता है।

समय शब्द जीवादि पदार्थों को लागू होता है, परंतु सारपना तो मात्र त्रिकाली शुद्ध जीव वस्तु को ही लागू होता है, घटित होता है। सार अर्थात् हितकारी और हितकारी अर्थात् सुखदायक, उसे जाननेवाले को सच्चा सुख होता है, सच्चा ज्ञान होता है – ऐसा श्री पंडित राजमलजी ने कलश टीका के प्रथम कलश में कहा है।

सिद्ध भगवान को भी सुख है ही; परंतु सिद्ध तो परवस्तु है, उन्हें जानने से परलक्षी ज्ञान होता है। परलक्षी ज्ञान से सुख कैसे हो सकता है ? 'अष्टपाहुड़' में कहा है कि – 'सदव्वाओ सुग्गई परदव्वाओ दुग्गई' अर्थात् स्वद्रव्य से सुगति और परद्रव्य से दुर्गति होती है। अरिहंत पर हैं, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने — वह परलक्षी ज्ञान है, आत्मज्ञान नहीं है; इसलिये सच्चा सुख नहीं है। अरिहंत समान त्रिकाल शुद्धस्वभावी, सुखस्वभावी निज आत्मा है – ऐसा

जानकर और पर्याय का लक्ष्य छोड़कर तथा गुण को द्रव्य में अभेद करके सिद्ध सदृश अपना ध्रुव स्वरूप जाने, तब सच्चा ज्ञान होता है, तब सच्चा सुख होता है और तभी पर्याय में स्वानुभूति प्रकट होती है।

त्रिकाली शुद्ध आत्मा ही उपादेय है और उसको पर्याय में स्वीकार किया, वही नमस्कार है। त्रिकाली निज शुद्धात्मा को शुद्ध पर्याययुक्त मानना अर्थात् शुद्ध पर्यायसहित ध्रुव आत्मा को उपादेय मानना, वहाँ पर्याययुक्तपना, वह उपाधि है, मेचक है, मलिन है, अशुद्ध है, व्यवहार है। उसे उपादेय माननेवाले को सच्चा ज्ञान नहीं होता, इसलिए सच्चा सुख भी नहीं होता और स्वानुभूति भी नहीं होती।

दूसरे (अन्य) शुद्ध जीव का लक्ष्य करे तो आत्मज्ञान नहीं होता, परंतु स्वयं ही शुद्ध जीव है, वहाँ पर्याय को लगाये, तब सच्चा ज्ञान होता है। शांति का सागर ध्रुव तत्त्व है, उसका आश्रय करे तो शांति होती है। सुख-शांति प्राप्त करने का यह एक ही उपाय है। जिन्होंने त्रिकाल शुद्ध आत्मा को लक्ष्य में नहीं लिया, वे सब चलते शव (मुर्दा) हैं, ऐसा 'भावपाहुड़' में कहा है।

निज भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन वस्तु स्वयं ही अपने को उपादेय है। निश्चय से तो मोक्ष की पर्याय भी आश्रय-आलंबन के योग्य नहीं है, संवर-निर्जरा (स्वानुभूति की) पर्याय भी हेय हैं। निश्चय से तो निज भगवान शुद्धात्मा स्वयं ही उपादेय है।

द्रव्य, द्रव्य से प्रकाशित नहीं होता, अथवा गुण से प्रकाशित नहीं होता, क्योंकि वह ध्रुव है; वह स्वानुभूति की पर्याय द्वारा प्रकाशित होता है, परंतु वह पर्याय ध्रुव का आश्रय लेती है, तब पर्याय में वस्तु प्रकाशित होती है, प्रकटती है।

यह तो तीन लोक के नाथ का कथन है। तीन लोक के नाथ पर्याय का द्रव्य के साथ विवाह कराते हैं। तुझे निर्मल पर्याय के साथ विवाह करना हो तो पर्याय की सगाई शुद्धात्म द्रव्य के साथ कर, ऐसा कहते हैं।

सर्वज्ञ-वीतराग देव की स्तुति करते समय इन्द्र १००८ नामों द्वारा स्तवन करते हैं। यहाँ सर्वज्ञ की अनेक नामों द्वारा स्तुति करते हैं, नमस्कार करते हैं। वे सर्व नाम कथंचित् सत्यार्थ

होने से, स्याद्‌वादी को कोई विरोध नहीं है, ऐसा सिद्ध किया है। वे प्रत्येक नाम प्रगट हुई पर्याय की अपेक्षा से कहे जाते हैं। वास्तव में तो वस्तु का स्वरूप ही उस-उस गुण स्वरूप होने के कारण उसके आश्रय से वह-वह पर्याय प्रगट होती है। सर्वज्ञ को निरंजन, निष्कलंक आदि कहा जाता है। वस्तु का स्वरूप त्रिकाली निष्कलंक ही है, उसके आश्रय से पूर्ण दशा प्रगट की, इसलिए उन्हें निष्कलंक कहा जाता है।

'चारित्रपाहुड़' में सर्वज्ञ की पर्याय को अक्षय, अमेय कहा है। जिसका कभी क्षय नहीं होता और जो मर्यादा रहित है, ऐसी उस पर्याय की शक्ति है। भगवान आत्मा द्रव्यरूप से अक्षय और अमेय है। उसके आश्रय से जो सर्वज्ञ दशा उत्पन्न हुई, वह व्यय रहित उत्पाद है, अर्थात् जो सर्वज्ञ दशा प्रगट हुई, वह सादि-अनंत अनंत काल तक रहेगी तथा एक समय की उस पर्याय की शक्ति अंतरहित आकाश के क्षेत्र को जान लेती है, ऐसी वह अमर्यादित शक्ति है। इसलिए उसे अक्षय, अमेय कहा है। इसप्रकार वह नाम कथंचित् सत्यार्थ होने से स्याद्‌वादी को कोई विरोध नहीं है।

कुतर्क ज्ञान को रोकनेवाला, शांति को नाश करनेवाला, श्रद्धा को भंग करनेवाला और अभिमान को बढ़ानेवाला मानसिक रोग है - जो कि अनेक प्रकार से ध्यान का शत्रु है; इसलिए मोक्षाभिलाषी जीवों को कुतर्क में अपनी बुद्धि लगाना योग्य नहीं है, परन्तु उसे आत्मतत्त्व में लगाना उचित है - जो कि स्वात्मोपलब्धिरूप सिद्धिसदन में प्रवेश करानेवाला है।

[योगसार, अधिकार ७, पद्य ५३]

व्यवहार प्रतिक्रमण की सार्थकता

व्यवहार प्रतिक्रमण की सफलता-सार्थकता कब कही जाती है ? यह बात आचार्यदेव नियमसार शास्त्र की ९४वीं गाथा द्वारा स्पष्ट करते हैं :-

पडिकमणणामधेये सुत्ते जह वण्णिदं पडिक्कमणं।
तह णच्चा जो भावइ तस्स तदा होदि पडिक्कमणं ॥९४॥

व्यवहार प्रतिक्रमण की जो बात शास्त्र में आती है, उसका विकल्प होता अवश्य है, परंतु उस विकल्प से हटकर शुद्ध चैतन्य आनंदघन में दृष्टि की स्थिरता द्वारा अतीन्द्रिय आनंद में लीन होना, सो निश्चय प्रतिक्रमण है और व्यवहार प्रतिक्रमण की सार्थकता भी तभी है। व्यवहार प्रतिक्रमण में अटक जाना, वह उसकी सार्थकता नहीं है, परंतु उससे हटकर स्वरूप की स्थिरता में रमण करना, वह व्यवहार प्रतिक्रमण की सार्थकता है।

निमित्त से, राग से तथा पर्याय से हटकर स्वरूप में रमणता साधना; वह निश्चय प्रतिक्रमण है और ऐसे निश्चय प्रतिक्रमण सहित यदि व्यवहार प्रतिक्रमण हो तो उस प्रतिक्रमण को व्यवहार प्रतिक्रमण कहा जाता है। निश्चय प्रतिक्रमण के बिना व्यवहार प्रतिक्रमण कैसे हो सकता है ?

हे आत्मा! यदि तुझे सच्चा प्रतिक्रमण करना हो तो संतों द्वारा रचे गये द्रव्यश्रुत का श्रवण कर। श्रवण का विकल्प होता है, परंतु श्रवण का फल विकल्प से हटकर अंतर में वीतरागी चारित्रमूर्तिवंत शुद्धात्मा में स्थिर होना है। द्रव्यश्रुत की रचना करनेवाले आचार्य देव का आदेश है कि हे मुनि! व्यवहार प्रतिक्रमण का ज्ञान करके, अंतर में स्थिर होने की निश्चय चारित्र की भावना करना। पापत्याग के लिये व्यवहार प्रतिक्रमण का विकल्प होता है परंतु उसे जानकर, उससे निवर्तन करके, विमुख होकर, हटकर, स्वरूप में स्थिर होना, सो व्यवहार प्रतिक्रमण की सार्थकता है।

ज्ञान में ऐसा निर्णय तो कर! वस्तु का स्वरूप ऐसा है, इसप्रकार ज्ञान में निर्णय को

अवकाश तो दे! अरे! अब मरकर कहाँ जाना है? प्रत्येक योनि में अनंत भव व्यतीत किए, अब तो पर से लक्ष्य हटाकर आत्मा में डुबकी लगा। यह सब शुभ विकल्प होते हैं, परंतु वह तेरे घर की वस्तु नहीं है..... भगवान! तू तो शरीर और राग की पीड़ा से भिन्न है, उस शरीर के रोग के प्रति तुझे जो तिरस्कार आता है, वह तो द्वेष है, वह एक भी वस्तु तेरे घर में नहीं है।

जिन-वीतरागी-नीति क्या है? लौकिक नीति तो पुण्यबंध का कारण है। लोकोत्तर नीति किसे कहते हैं? आत्मा आनंदमूर्ति, वीतरागस्वरूप है; उसकी दृष्टि करके विकल्प से शून्य तथा निर्विकल्पतायुक्त होकर स्वरूप में रमणता करना, वह जिन-नीति है।

बाह्य प्रपंच से विमुख जिन-नीति का उल्लंघन न करते हुए वीतराग चारित्रमूर्ति, जिनका चित्त समस्त चारित्र का निकेतन-धाम है, ऐसे महामुनि द्रव्यश्रुत में वर्णित व्यवहार प्रतिक्रमण को जानकर, सकल संयम की निश्चय प्रतिक्रमण की भावना करते हैं।

यहाँ व्यवहार प्रतिक्रमण को जानकर उससे हटकर स्वरूप में आरूढ़ होने की बात है। वहाँ कोई कुतर्क करे कि प्रतिक्रमण से हटने की बात है न! इसलिये अप्रतिक्रमण हो तो भले हो! उससे अमृतचन्द्राचार्यदेव आत्मख्याति नाम की टीका में १८९वें श्लोक द्वारा करुणा भरे शब्दों में कहते हैं कि :-

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतं,
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात्।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः,
किं नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहित निष्प्रमादः॥

अरे भाई! जहाँ प्रतिक्रमण को ही विष कहा है, वहाँ अप्रतिक्रमण अमृत कैसे होगा? तो फिर मनुष्य नीचे-नीचे गिरते हुए प्रमादी क्यों होते हैं? निष्प्रमादी होते हुए ऊपर-ऊपर क्यों नहीं चढ़ते?

१०१) रुपये में आत्मधर्म के स्थायी ग्राहक बनकर अपनी आगामी पीढ़ियों के लिये भी आत्मधर्म सुरक्षित कर दीजिये।

नयों के कथन का मूल प्रयोजन

सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'प्रवचनसार' नामक ग्रंथराज पर अमृतचंद्राचार्य ने 'तत्त्वप्रदीपिका' नामक गहन टीका संस्कृत भाषा में लिखी है। ग्रंथराज का मर्म स्पष्ट करने के लिए टीका के अंत में परिशिष्ट के रूप में ४७ नयों का अभूतपूर्व वर्णन है, जो प्रत्येक आत्मार्थी को जाननेयोग्य है।

द्रव्यदृष्टि प्राप्त करने के अभिलाषी आत्मार्थियों को आत्मा की विविध योग्यतारूप अनंत धर्मों का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी ने उक्त विषयों पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रवचन समय-समय पर दिये हैं। उन्हीं में से कुछ नयों के संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत हैं।

नयों के ज्ञान की उपयोगिता सिद्ध करते हुए गुरुदेव कहते हैं कि – कोई कहेगा कि नयों को जानने का क्या काम है ? यह तो ज्ञानप्रधान बात है। उसे जानने में पुरुषार्थ को क्यों व्यर्थ खोया जाये। ऐसी जानकारी तो ग्यारह अंग की जानकारी में अनंत बार आ गयी। उसकी अपेक्षा दृष्टिप्रधान विषय को समझने का पुरुषार्थ करें तो लाभ होगा।

उससे श्रीगुरु कहते हैं कि भाई ! धैर्य रख ! द्रव्यदृष्टि का विषय ऐसा जो आत्मद्रव्य, उसे सम्यक्‌रूप से समझने के लिये ही आचार्यदेव ने नय का अधिकार लिखा है। प्रमाणज्ञान का विषय ऐसा जो द्रव्य-गुण-पर्याय सहित आत्मा, उसके यथार्थ ज्ञान बिना शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत द्रव्य सामान्य का अवलंबन कैसे होगा ? द्रव्य-गुण तो त्रिकाल शुद्ध ही हैं, परंतु योग्यता रूप अनंत धर्म हैं, उन्हें जानकर त्रैकालिक वस्तु स्वभाव को मुख्य करके उसका अवलंबन लेना, वह इन नयों के कथन का प्रयोजन है।

जीव ने योग्यतारूपी अनंत धर्म धारण किये हैं, इसलिये उन्हें समझने में पुरुषार्थ व्यर्थ नहीं जाता। परंतु प्रयोजन की सिद्धि का ही वह पुरुषार्थ है तथा अनंत बार जो जानकारी की, वहाँ भी यथार्थ वस्तुस्थिति की समझ के अभाव में ही यह जीव संसार में भटकता रहा है।

इसलिये टीकाकार आचार्यदेव ने करुणाबुद्धि से नय का यह अधिकार प्रवचनसार के परिशिष्ट में लिया है। उसे गंभीररूप से समझने का पुरुषार्थ करना चाहिए।

ईश्वर नय :– आत्मद्रव्य ईश्वर नय से परतंत्रता भोगनेवाला है। धाय की दुकान पर दूध पिलाये जानेवाले मुसाफिर के बालक की भाँति।

बालक माता की गोद में हो, तब तो इच्छानुसार स्वतंत्ररूप से दूध पीता है। परंतु किन्हीं संयोगों में बालक को माता से अलग होना पड़े, उस समय धाय की दुकान पर अमुक समय ही दूध पिलवाते हैं। इसप्रकार धाय की दुकान पर उस बालक को परतंत्ररूप से दूध पीना होता है। उसीप्रकार यह जीव स्व–स्वभाव का आश्रय करे, तब स्वतंत्ररूप से आनंद का उपभोग करता है परंतु स्व–स्वभाव का आश्रय छोड़े, तब शुभभावरूपी विकार का अनुभव स्वयं पर के वश होकर करता होने से परतंत्र रूप से उपभोग करता है। यहाँ पर के उपभोग की नहीं, परंतु अपनी परतंत्रता की बात है।

कोई ऐसा कहे कि – भाई क्या करें! कर्म छोड़ें तब तो हम धर्म–मोक्ष प्राप्त करें ? कर्म हमें नहीं छोड़ते। उसे श्रीगुरु करुणापूर्वक उलाहना देते हैं कि – अरे जीव! तू उस मूर्ख बंदर की भाँति क्यों सोचता है ? सकरे मुँहवाली मटकी में बेर रखे थे। बंदर ने अंदर हाथ डालकर बेरों की मुट्ठी भरी। परंतु जब मुट्ठी बाँधा हुआ हाथ किसी भी प्रकार बाहर नहीं निकला, तब वह बंदर 'मुझे किसी ने अंदर से पकड़ लिया है'—ऐसे भ्रम के कारण अत्यंत दुःखी हो गया। उसीप्रकार हे जीव! तुझे कर्म परिभ्रमण कराते हैं, यह तेरा भ्रम है। सचमुच तुझ में एक ऐसा धर्म है कि तू स्वतंत्र रूप से स्वयं पर के वश होता है, इसलिये तुझे विकार होता है, कर्म या पर–द्रव्य तुझे वश में करें, ऐसा कोई धर्म तुझमें हैं ही नहीं। तेरी पर्याय में एक ऐसा सामर्थ्य है कि तू स्वतंत्ररूप से कर्म के वश होकर विकारी भाव करता है। देखो तो सही, पर्याय की योग्यता! यदि स्वतंत्ररूप से पर के वश होने की योग्यता न हो तो परवशपना छोड़ा कैसे जा सकता था ? सचमुच तो इस ईश्वरनय का तात्पर्य ऐसा है कि – परवश होने रूप परतंत्रता तूने अपनी स्वतंत्रता द्वारा उत्पन्न की है। इसलिये वह परवशता भी तू अपने स्वतंत्र सामर्थ्य द्वारा तोड़ सकेगा। अपनी परतंत्रता तोड़ने के लिये तुझे परोन्मुख होने की आवश्यकता नहीं होगी।

यद्यपि नय तो साधक जीव के होते हैं, साधक को अपनी अपूर्ण दशा का ज्ञान है, वह

जानता है कि मेरी अस्थिरता चारित्रमोह के उदय के आधीन नहीं है, परंतु मैं स्वयं चारित्रमोह के उदय के वश होता हूँ, इसलिये अस्थिरता का दोष मेरी पर्याय में वर्तता है। मेरी पर्याय में ईश्वर नय नाम का एक धर्म है कि जिससे मैं स्वयं पराधीन–चारित्रमोह के उदय के द्वारा होता हूँ।

पंचास्तिकाय गाथा ६२ की टीका में कहा है कि - जीव भी भाव पर्याय में (औदयिकादि भावरूप से परिणमित होने की क्रिया में) स्वयमेव छह कारक रूप से वर्तता हुआ अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता।

इसप्रकार स्वयमेव परतंत्रता भोगे, ऐसा पर्याय का एक धर्म है, और जीवद्रव्य उस धर्म का स्वामी होने से वह स्वयमेव परतंत्रता भोगता है। आठ द्रव्यकर्मों की प्रकृति के उदय के आधीन जीव स्वयं होता है, इसलिये संसार में भटकता है। वहाँ कर्मोदय के आधीन होने की योग्यता जीव की अपनी है। कर्म का उदय जबरन जीव को अपने वश में नहीं करता, परंतु जीव स्वयं पर के वश हो जाता है।

अनीश्वर नय :– हिरन को स्वच्छंदता से फाड़ खानेवाले सिंह की भाँति आत्मद्रव्य अनीश्वर नय से स्वतंत्रता भोगनेवाला है।

स्वयं विकाररूप से, रागरूप से परिणमित होता था, उसका स्वतंत्रता से नाश कर सकने रूप धर्म का धारक आत्मद्रव्य है। जिसप्रकार स्वयं कर्म के वश होकर विकाररूप परिणमित होने का एक धर्म है, उसीप्रकार विकार को नष्ट करने का भी स्वतंत्र सामर्थ्य जीव का अपना ही है। विकार को स्वतंत्ररूप से नाश करने का धर्म भी जीव ने धारण कर रखा है। कर्म का उदय मंद पड़े, तब विकार का नाश कर सके, अथवा प्रकृति मंद हो, तब जीव पुरुषार्थ कर सके, यह बात बिलकुल झूठी है।

भाई ! विकार को मिटाने के लिये तुझे पर की या कर्म की ओर देखकर बैठे रहने की आवश्यकता नहीं होगी, तू स्वयं ही स्वतंत्ररूप से विकार को मिटा सके, ऐसा एक धर्म तुझमें विद्यमान है। अबुद्धिपूर्वक का राग भी अपने पुरुषार्थ से ही दूर होता है, ऐसा ही पर्याय का धर्म है। पर की अपेक्षा रखे बिना, निरपेक्षरूप से, स्वतंत्ररूप से, अपनी संसारदशा को मिटा सके, ऐसा एक धर्म आत्मद्रव्य ने धारण कर रखा है।

कर्तृनय :– आत्मद्रव्य कर्तृनय से रंगरेज की भाँति रागादि परिणामों का कर्त्ता है।

आत्मा में पर्याय की योग्यतारूप कर्तृत्व नाम का एक धर्म है, इसलिये अपनी पर्याय में वर्तते हुए रागादि मलिन भावों का कर्ता आत्मा है, ऐसा साधक जानता है। यह नय पर्याय के एक धर्म का ज्ञान कराता है। परंतु ऐसा नहीं है कि रागादि करनेयोग्य हैं। पर के कारण, निमित्त के कारण या कर्म के कारण रागादि होते हैं, ऐसा भी नहीं है। अपनी पर्याय की योग्यता के कारण रागादि होते हैं और उनका कर्ता जीव स्वयं है।

यहाँ ज्ञान प्रधान कथन होने से जीव रागादि का कर्ता एक नय से है, ऐसा कहा है, परंतु दृष्टि की अपेक्षा तो पुद्‌गलद्रव्य राग का कर्ता है।

वास्तव में तो नय साधक को ही होते हैं और जब साधक की दृष्टि में से रागादि का कर्तृत्व-स्वामित्व छूट गया, तब तो वह सम्यक्‌दृष्टि हुआ है; इसलिये स्वामित्व रूप कर्तापना है, ऐसा साधक मानता ही नहीं है। परंतु अपनी पर्याय में होनेरूप, परिणमनरूप, अस्तित्वरूप एक नय से कर्तापना है, ऐसा साधक समझता है।

दृष्टि की अपेक्षा से साधक को शुद्ध परिणमन ही होता है, क्योंकि दृष्टि का विषय जो त्रैकालिक सामान्य द्रव्य है, वह तो शुद्ध ही है और दृष्टि ने ऐसे द्रव्य को विषय बनाया है, आश्रय लिया है, इसलिये दृष्टि भी शुद्ध ही है। इसप्रकार रागादि का रुचिपूर्वक का कर्तृत्व तो ज्ञानी को चतुर्थ गुणसथान से ही छूट गया है, तथापि ज्ञान की अपेक्षा से साधक को पर्याय के अंश में अस्थिरता का राग है, उसका कर्ता कर्तृनय से आत्मा है, ऐसा ज्ञानी जानता है।

अकर्तृनय :- आत्मद्रव्य अकर्तृनय से केवल साक्षी ही है (कर्ता नहीं है) अपने कार्य में प्रवृत्त रंगरेज को देखनेवाले पुरुष प्रेक्षक की भाँति।

आत्मा में एक ऐसा धर्म है कि - जिस समय वह रागादिक को करता है, उसी समय वह रागादि का केवल साक्षी मात्र ही है। जिसप्रकार अपने कार्य में प्रवृत्त रंगरेज को कोई प्रेक्षक साक्षीरूप से देखनेवाला ही है, करनेवाला नहीं है। उसीप्रकार पर्याय की योग्यतारूप एक धर्म ऐसा है कि जीव रागादि का कर्त्ता नहीं, मात्र साक्षी ही है।

जिस समय जीव रागादि का कर्ता है, उसी समय रागादि का मात्र साक्षी ही है; ऐसे दो धर्म एक ही जीवद्रव्य ने एक ही समय में धारण कर रखे हैं - ऐसा जानकर वहाँ अटकना नहीं है, परंतु ऐसे अनंत धर्म हैं, ऐसा जानकर शुद्ध चैतन्य मात्र को दृष्टि का विषय बनाना ही प्रयोजन है। ❀

तू स्वयं प्रभु है!

पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी अनन्त करुणावंत होकर बार-बार समझाते हैं कि हे आत्मन्! तू स्वयं प्रभु है। स्वभाव से तो तू प्रभु है ही, यदि स्वभाव का आश्रय करे तो पर्याय की पामरता मेटकर पर्याय में भी प्रभुता प्रगट कर सकता है। वे कहते हैं :-

प्रभु! तू ज्ञानस्वरूप है, तू समझ सकता है, यही समझ कर तुझे समझा रहे हैं। 'मैं नहीं समझ सकूँगा' यह शल्य ही तुझे समझने में बाधक है। भगवंत! यह बात मन से निकाल दे कि मैं नहीं समझ सकता। ऐसी उत्तम मनुष्य देह और सत् को समझने का यह उत्तम सुयोग मिला, फिर भी सत् न समझा जाए, यह कैसे हो सकता है? चैतन्य बल से भगवान आत्मा परिपूर्ण है। यदि यह बल स्वोन्मुख हो तो वीतराग हो जाए। अनंतानंत आत्मा स्वानुभव की प्रतीति करके मुक्त हो गए हैं। प्रत्येक आत्मा प्रतीति कर सकता है।

अनंत काल से संसार में जो परिभ्रमण कर रहा है, वह दूसरे की भूल से नहीं, किन्तु अपनी भूल से कर रहा है। जो भगवान (सिद्ध) हो गये हैं, वे तो परिपूर्ण स्वरूप को प्राप्त वीतराग हैं। वे किसी पर कृपा या अकृपा नहीं करते। उनने तो केवल मार्ग दिखाया है। जो इस मार्ग पर चलता है, उसका कल्याण होता है।

देह-मन-वाणी के साधन से त्रिकाल में भी धर्म नहीं हो सकता। यहाँ तो मोक्ष होने की बात है, जन्म-मरण का अंत करने की बात है। स्वभाव को पहिचाने बिना जन्म-मरण का अंत कदापि नहीं हो सकता। इस बात को समझना भी कठिन हो गया है। भगवान आत्मा स्वयं प्रभु है, किंतु उसने अपने अंतरंग पथ को कभी भी प्रीतिपूर्वक नहीं सुना - समझा।

अंतर (चैतन्य) शक्ति की सामर्थ्य परिपूर्ण है, किंतु अनादि काल से ऊपर ही ऊपर दृष्टि रही है, इसलिए उसे अपना परिपूर्ण स्वरूप प्रतिभासित नहीं होता।

आत्मप्रतीति के साथ आत्मा की स्थिरता में रहकर आगे बढ़ना, सो मोक्षमार्ग है। उसे मोक्षमार्ग कहो, अमृतमार्ग कहो, या स्वरूपमार्ग कहो।

जो प्रभु हुए हैं, वे बाह्य साधनों से नहीं, किंतु अंतर स्वरूप की सामर्थ्य से हुए हैं। समस्त आत्मा शक्ति की अपेक्षा से प्रभु स्वरूप हैं। जो अपनी प्रभुता को पहिचान लेता है, वह प्रभु होता है।

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न – आपश्री के द्वारा बताया गया आत्मा का महात्म्य आने पर भी कार्य क्यों नहीं होता ?

उत्तर – अंदर जो अपूर्व महात्म्य आना चाहिये, वह नहीं आता। एक दम उल्लसित होकर अंदर से जो महिमा आनी चाहिए, वह नहीं आती। भले धारणा में महात्म्य आता हो।

प्रश्न – वास्तविक महात्म्य लाने के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर – एक आत्मा की ही यथार्थ में अंदर से रुचि जगे और भव के भावों की थकान लगे तो आत्मा का अंदर से महात्म्य आये बिना रहता ही नहीं। वास्तव में जिसे आत्मा चाहिये है, उसको आत्मा मिलती ही है। श्रीमद् ने भी कहा है – छूटने का इच्छुक बंधता नहीं है।

प्रश्न – चारित्र का कारण दर्शन-ज्ञान कहा है, तब दर्शन-ज्ञान का कारण कौन है ?

उत्तर – दर्शन-ज्ञान का कारण त्रैकालिक आत्मद्रव्य है।

प्रश्न – भगवान द्वारा कहा गया व्यवहार का पालन करने पर भी अभव्य को आत्मा को अवलंबन ही नहीं होता। तिर्यंच सम्यग्दृष्टि को व्यवहार नहीं है, तब भी आत्मा का अवलंबन है क्या ?

उत्तर – हाँ! यहाँ खूबी तो यह है कि व्यवहार को भी जिनेन्द्र भगवान ने देखा है और उनने कहा है, वैसा व्यवहार का पालन करने पर भी आत्मा का आश्रय नहीं लेता, उसको निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रकट नहीं होते। दूसरे के द्वारा कहे गये व्यवहार की बात नहीं, सर्वज्ञ भगवान के द्वारा कहे गये व्यवहार का भी निश्चय में निषेध होता है।

प्रश्न – निश्चय के द्वारा व्यवहार का निषेध होता है, इसलिये निषेध्य है, ऐसा विचार करके व्यवहार को छोड़ दे और निश्चय हो नहीं तो ?

उत्तर – आत्मा में झुके तब व्यवहार हेय हो जाता है। हेय करूँ – हेय करूँ—ऐसा करता है, यह तो विकल्प है। निश्चय में जाते ही व्यवहार हेयरूप हो जाता है, निषेध सहज होता है।

प्रश्न – निश्चयनय कितने प्रकार का कहा जाता है ?

उत्तर – यथार्थ में तो त्रिकाली द्रव्य, यही निश्चय है। राग को जब व्यवहार कहना हो, तब निर्मल पर्याय को उससे भिन्न बताना, उसको निश्चय कहा जाता है। कर्म को व्यवहार कहना हो, तब राग को निश्चय कहा जाये। अनुभूति की पर्याय यह व्यवहार है, तो भी द्रव्य की ओर ढली है, इससे उसको निश्चय कहकर अनुभूति को ही आत्मा कहा है। इसप्रकार अपेक्षा से निश्चयनय के अनेक भेद हो जाते हैं।

प्रश्न – छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय है। पंच परमेष्ठी भगवान भी ज्ञेय में आ जाते हैं, इससे जानने योग्य हैं, ऐसा कहा है; तब हमें भगवान की भक्ति करना चाहिये या नहीं ?

उत्तर– भक्ति करने, न करने की बात नहीं, लेकिन भक्ति का भाव यह ज्ञेय होने से जानने लायक है, ऐसा कहा है। समयसार गाथा ११ में ऐसा कहा है कि भूतार्थ प्रभु का आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन होता है। त्रिकाली का आश्रय लेकर जो निर्मल पर्याय प्रकट हुई उसको भी त्रिकाली से भिन्न कहा है। और १२वीं गाथा में कहा है कि साधक हुआ उसको शुद्धता के थोड़े (अल्प) अंश हुए हैं। अशुद्धता के अंश हैं, उसका क्या ? तो कहते हैं कि यह शुद्ध-अशुद्ध पर्याय अंश है, वह जानने योग्य है।

प्रश्न– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष उसे देव देता है। जिसके पास जो होता है, वह देता है, तो यहाँ किसप्रकार है ?

उत्तर– यह तो निमित्त से व्यवहार का कथन है। देव की ओर झुकाववाले के शुद्धता प्रकट होती है और साथ में पुण्यबंध होता है। उसके फल में काम और अर्थ मिलता है।

प्रश्न– यह तो ठीक! भगवान के पास से क्या यह सब मिलता है ?

उत्तर– जिसको काम और अर्थ की स्पृहा है, भावना है, उसको मिलता नहीं; लेकिन जिसको आत्मा के हित की भावना है, उसके साथ पुण्य बँधता है और उसका फल मिलता है, यह बात समझाई है।

<u>द्रव्यसंग्रह प्रवचन—</u>

भगवान को नमस्कार करने की रीति

"स्वयं के शुद्ध स्वभाव के भाव के बिना भगवान को भी यथार्थ नमस्कार नहीं होता।" वृहद्द्रव्यसंग्रह के मंगलाचरण पर प्रवचन करते हुए पूज्य स्वामीजी ने उक्त शब्द कहे।

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर उनके प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमश: दिया जा रहा है।

इस वृहद्द्रव्यसंग्रह में छह द्रव्यों का वर्णन है। भगवान सर्वज्ञदेव ने ज्ञान में छह वस्तुयें पृथक्-पृथक् देखी हैं, उनका इसमें वर्णन है। इस शास्त्र के कर्ता श्री नेमिचन्द्र आचार्य हैं, वे सिद्धांतचक्रवर्ती थे। भगवान की दिव्यध्वनि परंपरा में से संतों ने षट्खंडागम रचे (बनाये) हैं। उसका जिसको ज्ञान हो, उसको सिद्धांतचक्रवर्ती कहा जाता है। ये आचार्य लगभग वि.सं. ७०० में हुए हैं। इसमें छह द्रव्यों का भिन्न-भिन्न स्वरूप का वर्णन है। 'समयसार' में तो शुद्ध द्रव्य दृष्टि के विषय की प्रधानता से ज्ञायक द्रव्य का वर्णन है और इसमें ज्ञानप्रधान कथन है। इस द्रव्यसंग्रह में ५८ गाथायें हैं, उनमें तो 'गागर में सागर' भर दिया है। इस जगह प्रथम अनुवादक मंगलाचरण करते हैं :-

श्री वीरंजिनमानम्य, जीवाजीवावबोधकम्।
द्रव्यसंग्रह ग्रंथस्य, देश भाषां करोम्यहम्॥

श्री वीर भगवान को नमस्कार कर जीव-अजीवद्रव्यों का बोध करानेवाले ऐसे इस द्रव्यसंग्रह शास्त्र की देश भाषा को करता हूँ।

संस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेव हैं। वे मंगलाचरण करते हैं :—

प्रणम्य परमात्मानं, सिद्धंत्रैलोक्य वन्दितम्।
स्वाभाविक चिदानन्द स्वरूपं निर्मलाव्ययम्॥१॥

शुद्ध जीवादि द्रव्याणां, देशकंच जिनेश्वरम्।
द्रव्य संग्रहसूत्राणां, वृत्तिंवक्ष्ये समासतः ॥२॥युग्मम्॥

मंगलाचरण में सिद्ध भगवान को नमस्कार किया है, सिद्ध भगवान तीनों लोक से वंदनीय हैं। तीन लोक के प्रधान पुरुष सिद्धों को नमस्कार करते हैं। सिद्धों को स्वाभाविक ज्ञान और आनंद है। बाहर से ज्ञान और आनंद नहीं आता, किंतु स्वयं के स्वभाव में एकाग्रता करने से स्वभावमें से ही ज्ञान और आनंद उत्पन्न हुये हैं। ज्ञान और आनंद स्वभाव से उत्पन्न हुये हैं, अर्थात् पर से परद्रव्य से उत्पन्न नहीं होते हैं। आत्मा में शक्तिरूप से सामर्थ्य तो था, किंतु सिद्धदशा अनादि से व्यक्त नहीं थी; स्वभाव का श्रद्धा-ज्ञान करके एकाग्रता से सिद्धदशा प्रगट हुई, उसमें स्वभाव से ही ज्ञान और आनंद है। इसके अतिरिक्त सिद्ध भगवंत निर्मल हैं, राग-द्वेषादि मैल नहीं हैं, तथा निमित्त की अपेक्षा कर्म का मैल भी नहीं है, तथा उन सिद्धों का फिर से (दुबारा) जन्म नहीं होता। उन्होंने अविनाशी परमात्मदशा को प्राप्त किया है। भगवान को फिर से जन्म लेने की इच्छा नहीं होती, और उनका जन्म-अवतार भी नहीं होता। ऐसे सिद्ध भगवंतों को नमस्कार हो।

शुद्ध जीव द्रव्य वगैरह छह द्रव्यों का उपदेश देनेवाले श्री जिनेन्द्र भगवान को भी नमस्कार हो। इसप्रकार मंगलाचरण कर इस द्रव्यसंग्रह नाम के सूत्र की मैं टीका करूँगा, श्री ब्रह्मदेव सूरि ने ऐसी प्रतिज्ञा की।

यह शास्त्र किसके निमित्त से रचा है? उसे कहते हैं।

मालवा देश की धारा नगरी में भोजदेव नामक राजा के संबंधी श्रीपाल मंडलेश्वर थे। उनके 'आश्रम' नाम के नगर में श्री मुनिसुव्रत भगवान के चैत्यालय में इस शास्त्र की रचना की थी। सोम नामक राजा-श्रेष्ठ के लिये इस ग्रंथ की रचना की है।

वे सोम नाम के नगरसेठ कैसे हैं? यह कहते हैं। शुद्धात्मद्रव्य के ज्ञान से उत्पन्न जो परमानंद अमृत है, उससे विपरीत चार गति के दुःख हैं। इन चारों गति के दुःख से जो भयभीत हैं, और चिदानंद परमात्मा की भावना से उत्पन्न ऐसे परम सुखामृत-पान के अभिलाषी हैं तथा निश्चय व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय की भावना जिनको प्रिय है। देखिये, जिसको संसार प्रिय है, उसको यह बात रुचिकर नहीं होगी। श्रोता कैसा होना चाहिये? वह

इसमें आ जाता है कि जिसको चारगति का भय होता है, और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावना जिसको प्रिय हो, ऐसा जीव इस द्रव्यसंग्रह का श्रोता होने योग्य है। देखो, गृहस्थाश्रम में रहनेवाले महान सेठ को भी ऐसे धर्म से प्रेम होता है। ऐसे धर्मप्रेमी जीव के लिये आचार्यदेव ने पहले द्रव्यसंग्रह की २६ गाथायें रचीं और बाद में विशेष तत्त्व बताने के लिये अन्य गाथायें रचीं - बनायीं। इसप्रकार इस वृहद्द्रव्यसंग्रह की रचना हुई।

अब, उसमें पहिले गाथा कहते है, उसमें मंगलाचरण करते हैं तथा ग्रंथ का संबंध, ध्येय वगैरह बतलाते हैं।

सूत्र - **जीवमजीवंदव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।**
देविंदविंद वंदं, वन्दे तंसव्वदा सिरसा॥१॥

देखो, निर्ग्रंथ दिगम्बर संत श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती, जंगल में रहनेवाले, आत्मा के आनंद में झूलनेवाले - रमण करनेवाले महान संत थे। वन में जैसे सिंह विचरण करता है, वैसे वे आत्मा के मोक्षमार्ग में विचरण करते थे। वे कहते हैं कि जिनवरों में प्रधान ऐसे श्री तीर्थंकरदेव ने जीव और अजीवद्रव्यों का कथन किया है, तथा देवेन्द्रों के समूह से वंदित हैं, ऐसे तीर्थंकरदेव को मैं हमेशा मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

देखो, विकल्प हुआ है, इसलिए ऐसा कहा है कि हमेशा मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ। यह तो निमित्त का कथन है। नमस्कार में भी नयों का अवलंबन लेकर अद्‌भुत कथन होगा। इस शास्त्र में नयों का बहुत ही सरल विस्तार है।

अब, गाथा के प्रत्येक शब्द का अर्थ करते हैं :-

'वन्दे' - अर्थात् वंदन करता हूँ। किसप्रकार वंदन करता हूँ, इसमें नय की अपेक्षा है।

(१) एक-देश शुद्ध ऐसा जो निश्चयनय है, उसकी अपेक्षा से स्वयं के शुद्ध आत्मा का आराधन करनेवाले भावस्तवन से वंदना करते हैं। स्वयं के चिदानंदस्वभाव का भान करके उसमें एकाग्रता से जिस अंश में शुद्ध पर्याय प्रगट हुयी है, उसका नाम एकदेश शुद्ध निश्चयनय है। निर्मल पर्याय का अंश प्रगट हुआ, उतना एकदेश शुद्ध निश्चयनय से नमस्कार है। देखो, शरीर की क्रिया तो बाहर में आयी और विकल्प हुआ, वह व्यवहार में आया। निर्मल पर्याय

प्रगट हुई और अंतर में अभेद हुई, उतना निश्चयनय से नमस्कार है। देखो, अरिहन्त भगवान को नमस्कार करने की यह रीति। स्व-पर्याय की शुद्धता हुई, उसको जाननेवाला ज्ञान, वह पर्याय अपेक्षा से शुद्ध निश्चयनय है। यहाँ निश्चयनय कहा है, वह पर्याय अपेक्षा से है। पर्याय में आंशिक शुद्धता प्रगट हुई, उसको जानना, उसका नाम एकदेश शुद्ध निश्चयनय है। समयसार तो शुद्धद्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से निर्मल पर्याय को भी अभूतार्थ कहकर व्यवहार का विषय मानता है और यहाँ उस पर्याय को एकदेश शुद्ध निश्चयनय का विषय कहा है।

देखो, यथार्थ तत्त्व समझे बिना जीव ने मंदराग अनंत बार किया, और अनंत बार नमस्कार मंत्र बोलकर पुण्य का बंध किया, स्वर्ग में अनंत बार गया, लेकिन यहाँ कहते हैं कि ऐसा एकदेश शुद्ध निश्चयरूप भावनमस्कार करे तो अल्पकाल में मोक्ष हुये बिना न रहे। यहाँ तो ऐसा वंदन करता है कि जिससे मुक्ति ही हो।

स्वयं के शुद्ध स्वभाव के भान के बिना यथार्थ नमस्कार नहीं होता। वंदन करनेवाला कैसा है ? और वंदन करनेयोग्य कैसा है ? इसके भान बगैर सत्य वंदन नहीं होता। मैं ज्ञायक मूर्ति भगवान हूँ, ऐसे स्वयं के स्वभाव की आराधना करना, उसका नाम निश्चय से भावस्तवन है। शुभभाव हो, उसको यहाँ भावस्तवन नहीं कहा, किंतु रागरहित चैतन्य में एकाग्रता हो, उसका नाम भावस्तवन है। ऐसे भावस्तवन से मैं नमस्कार करता हूँ, अर्थात् मैं शुद्धात्मा का भान करके उसकी आराधना करता हूँ। बीच में विकल्प आये, उस पर ध्यान नहीं देता। भगवान की ओर का लक्ष्य (लड़ी) वह विकल्प है, राग है, वह वास्तविक में नमस्कार नहीं। स्वयं की निज शुद्धात्मा की प्रतीति और एकाग्रता हो, वह भावनमस्कार है। पर को – अन्य को नमस्कार करना, यह व्यवहार है। स्वयं, स्वयं की निर्मल वीतरागी पर्याय द्वारा स्वयं की आत्मा में झुक गया, नम गया, यह निश्चय से भावनमस्कार है। अभी यह साधकदशा की बात है, इससे एकदेश शुद्धता की बात ली गयी है। अंदर में ऐसे निश्चयसहित भगवान को नमस्कार करने का विकल्प आये, वह व्यवहार नमस्कार है।

(२) असद्भूतव्यवहारनय की अपेक्षा से जो निज शुद्धात्मा का प्रतिपादन करनेवाले वचनरूप द्रव्यस्तवन से नमस्कार करता हूँ। देखो, जिसके अंतरंग में शुद्ध चैतन्य की आराधना रूप नमस्कार विद्यमान है, ऐसे जीव को विकल्प उठते ही वाणी से शुद्ध आत्मा की प्रशंसा

करता है, उसको द्रव्यनमस्कार कहा जाता है। अहो! निज शुद्धात्मा में अंतरंग की ओर झुकाव-भाव होना, वही धर्म है। इसप्रकार के वचनों से निज शुद्धात्मा का स्तवन करना, वह असद्भूतव्यवहारनय से नमस्कार है। वचन वाणी जड़ है, वह आत्मा से भिन्न है, इसलिये उसको असद्भूत कहा है। वाणी निकली, उसको द्रव्यनमस्कार कहा, और उस समय स्वभाव में एकाग्रता हुई है, उतना भावनमस्कार कहा है। इसप्रकार भाव और द्रव्य दोनों को साथ-साथ रखकर वर्णन किया है। अंतरस्वरूप में वीतरागभाव से एकाग्रता हुई, जितना भाव नमन, वह निश्चय, और विकल्प उठने से वाणी निकली तो उस वाणी में भी शुद्धात्मा का ही आदर और बहुमान करता है, उसको द्रव्यनमस्कार कहा है। अहो! मेरी आत्मा ही परमात्मा है। आत्मा का आराधन करके मैं ही 'परमात्मा होऊँगा' ऐसी वाणी निकाले, उसको भी असद्भूत व्यवहारनय से द्रव्यनमस्कार कहा है। देखो, इसका नाम भगवान को नमस्कार है। भगवान का नाम लो ऐसी बात भी नहीं आई! जिसने भगवान शुद्धात्मा का बहुमान किया, यथार्थ में उसने ही भगवान को नमस्कार किया है। अरे! शुद्धात्मा ही श्रवण करना, शुद्धात्मा ही कहना, उसका ही मनन-चिंतन करना, इसप्रकार शुद्धात्मा की भावना कर, उसमें लीनता-तल्लीनता की, उतना निश्चय से भावनमस्कार है, और अभी साधकदशा है, वहाँ विकल्प उठा, वाणी निकली, वह द्रव्यनमस्कार है, वह असद्भूतव्यवहार से नमस्कार है। नमस्कार करने में दो नयों की अपेक्षा से कहा। १- शुद्धात्मा का श्रद्धा-ज्ञान करके उसमें एकाग्रता से शुद्ध पर्याय प्रगट हुई, उसका नाम एकदेश शुद्ध निश्चय से नमस्कार है। २- विकल्प उठा, शुद्धात्मा के बहुमान की वाणी निकली, वह असद्भूतव्यवहार से नमस्कार है।

(३) अब, तीसरे नय की अपेक्षा कहते हैं। परम शुद्ध निश्चयनय से तो वंद्य-वंदक भाव ही नहीं। मैं वंदन करनेवाला हूँ और भगवान वंद्य हैं, ऐसा वंद्य-वंदक भाव का विकल्प आत्मा के स्वभाव में नहीं। तथा जहाँ पूर्ण दशा शुद्ध प्रगट हुई है, वहाँ केवली भगवान को भी वंद्य-वंदक भाव नहीं है। सातवें गुणस्थान से ही ऐसी निर्विकल्पदशा होती है कि वहाँ वंद्य-वंदक भाव का विकल्प नहीं होता। केवली भगवान 'नमो तीर्थाय' इसप्रकार चार तीर्थों को नमस्कार नहीं करते। चिदानंदस्वभाव के भान के बाद निर्विकल्प दशा न हो, तब तक छठवें गुणस्थान तक वंद्य-वंदक भाव का विकल्प होता है, इसके बाद उसको विकल्प नहीं होता।

समाचार दर्शन

सोनगढ़ :- पूज्य गुरुदेवश्री सुख शांति में विराजमान हैं। शिक्षण शिविर ३१ जुलाई से प्रारंभ हो गया है। सैकड़ों की संख्या में आत्मार्थी बंधु दूर-दूर से आ रहे हैं। यह शिक्षण शिविर १९ अगस्त तक चलेगा। जो भी सज्जन लाभ प्राप्त करना चाहें वे अति शीघ्र तीर्थधाम सोनगढ़ पहुँचें। ठहरने और भोजनादि की समुचि व्यवस्था है।

जगह-जगह वीतराग विज्ञान पाठशालाओं का शुभारम्भ

भारतीवर्षीय वीतराग विज्ञान पाठशाला समिति के कार्यालय में ललितपुर-झाँसी जिला एवं उसके आस-पास गाँवों से वीतराग विज्ञान पाठशालाओं के खुलने के समाचार निरंतर आ रहे हैं। उन सबके समाचार तो स्थानाभाव के कारण यहाँ देना संभव नहीं है, कुछेक के दिये जा रहे हैं; शेष के अगले अंक में देंगे। इसप्रकार हम देखते हैं कि ललितपुर प्रशिक्षण शिविर के अच्छे परिणाम आना आरंभ हो गये हैं।

खजुरिया :- झाँसी-ललितपुर जिला वीतराग विज्ञान पाठशाला समिति के अध्यक्ष श्री हीरालालजी खजुरिया वालों ने अपने गाँव में वीतराग विज्ञान पाठशाला खोलकर समिति का कार्य आरंभ कर दिया है। उनके द्वारा और भी अनेक पाठशालाएँ आरम्भ करने का प्रयत्न चल रहा है।

जखौरा :- में 'श्री दौलतराम वर्णी दिगम्बर जैन वीतराग विज्ञान पाठशाला' इस नाम से नवीन पाठशाला दिनांक १५-६-७६ को प्रारंभ हुई, जिसमें ललितपुर शिविर में प्रशिक्षित अध्यापक श्री कपूरचंदजी दुकनया बालकों को अच्छी तरह अध्ययन करा रहे हैं।

मोहली :- में एक और नवीन वीतराग विज्ञान पाठशाला आरंभ हो गई है। पाठशाला के मंत्री पंडित कल्याणचंदजी लिखते हैं कि ललितपुर में हमारे पंडितजी एक पाठशाला खोलने का वचन देकर आये थे। तदनुसार दिनांक १-७-७६ से नवीन पाठशाला प्रारंभ कर दी है। यहाँ दो वीतराग विज्ञान पाठशालाएँ पहले से ही चल रही हैं।

लूणदा :- में भी अष्टाह्निका पर्व के प्रारंभ होने के साथ-साथ 'वीतराग विज्ञान पाठशाला' दिनांक ३-७-७६ को प्रारंभ हो चुकी है।

कटंगी :- में 'वीतराग विज्ञान पाठशाला' का शुभारंभ हो गया है। ललितपुर शिविर में प्रशिक्षित डॉ. सुनतकुमारजी स्वयं पाठशाला चलाते हैं। वे लिखते हैं कि मैं शिविर में पहुँचा, यह मेरा अपूर्व सौभाग्य है। श्रीमान् पंडित बाबूभाई मेहता तथा डॉ. हुकमचंद भारिल्ल के प्रवचनों से मुझे बहुत प्रेरणा मिली।

कूंण :- में 'वीतराग विज्ञान पाठशाला' दिनांक १८-६-७६ को आरंभ हुई, जिसमें श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ का पाठ्यक्रम प्रारंभ किया गया। बालक-बालिकाओं को इस पढ़ाई में बहुत रुचि आ रही है क्योंकि अध्यापक इसी वर्ष ललितपुर से प्रशिक्षण प्राप्त करके आये हैं, वे उसी पद्धति से पढ़ाते हैं।

महाराष्ट्र

हिंगोली से डॉ. प्रियंकर जैन लिखते हैं कि 'मुझे ललितपुर शिविर से बहुत प्रेरणा मिली है और मैंने संकल्प किया है कि सोनगढ़ शिविर में जाने तक १५ पाठशालाएँ खुलवाऊँगा।' इसके लिए डॉ. जैन गाँव-गाँव जाकर पाठशाला खोलने की प्रेरणा देते हैं। उनके प्रयत्न से हिंगोली, शिरडशहापुर, बसमत, परमणी, नांदेड, कलमनुरी, बाल्हूर में पाठशालाएँ प्रारंभ हो चुकी हैं।

इसीप्रकार कोल्हापुर जैन श्राविकाश्रम की प्रधान डॉ. विजयलक्ष्मी पांगल को भी तत्त्वप्रचार का बहुत उत्साह है। वे बिना किसी स्वार्थ के महाराष्ट्र के गाँव-गाँव जाती हैं। वहाँ लोगों को पाठशाला खोलने, स्वाध्याय आदि की प्रेरणा देती हैं व बच्चों को कैसे पढ़ाना, यह स्वयं पढ़ाकर बताती हैं।

डॉ. पांगल के प्रयत्न से कर्नाटक राज्य में भी वीतराग विज्ञान पाठशालाएँ चल रही हैं। उनके प्रेरणा से निम्नलिखित गाँवों में पाठशालाएँ खुली हैं - पूना, कोल्हापुर, सांगाव, मांणगांव, वार्शी, सोलापुर, माढा, कारंजा, नातेपुते, बावडा-इन्दापुर, निपाणी, कोगनोली, मोड़निंव, करकंब, आलंद, अक्कलकोट।

इनके अलावा जयसिंगपुर, हेर्ले, वाल्हे, नीरा, कुर्डुवाडी महातपुर, फलटन, अकलूज, अंकली, चिकोड़ी, बेलगांव, बसगडे आदि जगहों पर पाठशालाएँ खोलने का प्रयत्न जारी है।

उक्त सभी पाठशालाओं में वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है तथा पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के शिविरों में प्रशिक्षित अध्यापक पढ़ाते हैं। —हेमचंद जैन 'चेतन'

दाहोद :- १३ मई, ७६ से २१ मई ७६ तक जैनधर्म शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें श्री पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर और श्री डॉ. हुकमचंद भारिल्ल जयपुर आदि विद्वानों के प्रवचनों से काफी धर्म प्रभावना हुई। इस शिविर का आयोजन श्री पंडित माणेकचंदजी मेहता द्वारा किया गया था। शिविर में सोनगढ़ तथा जयपुर से प्रकाशित साहित्य बहुत अधिक संख्या में बिका तथा आत्मधर्म के भी अनेक ग्राहक बने।

महत्त्वपूर्ण जानकारी

श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर द्वारा फरवरी १९७६ में निम्नलिखित ग्रंथों की ग्रंथशः परीक्षा ली गईं :- छहढाला, द्रव्यसंग्रह, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, तत्त्वार्थसूत्र पूर्वार्द्ध, तत्त्वार्थसूत्र उत्तरार्द्ध, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, जैन सिद्धांत प्रवेशिका (गोपालदासजी बरैया), लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, मोक्षमार्गप्रकाशक पूर्वार्द्ध और मोक्षमार्गप्रकाशक उत्तरार्द्ध।

इनके अतिरिक्त खण्डशः परीक्षा में बालबोध के तीनों खण्ड, प्रवेशिका के तीनों खण्ड और विशारद के चारों खण्डों की भी परीक्षा हुई, जिनके निर्धारित पाठयक्रम में निम्नलिखित ग्रंथ व उनके अंश सम्मिलित हैं :-

बालबोध पाठमाला भाग १, २, ३; वीतराग विज्ञान पाठमाला, भाग १, २, ३; तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १, २; परीक्षा मुख-सूत्र (३ अध्याय), आप्तमीमांसा (प्रथम अध्याय), गोम्मटसार जीव-कांड (गुणस्थानाधिकार), गोम्मटसार कर्मकांड (प्रकृति-समुत्कीर्तन अधिकार), नाटक समयसार (पुण्यपाप अधिकार), समयसार मूल व आत्मख्याति टीका सहित (कर्ताकर्म अधिकार), जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग २ (निमित्त उपादानाधिकार), तथा छहढाला, द्रव्यसंग्रह, रत्नकरण्डश्रावकाचार, मोक्षशास्त्र, मोक्षमार्गप्रकाशक के अंश भी निर्धारित हैं।

ग्रीष्मकालीन परीक्षायें भी जून १९७६ में संपन्न हो चुकी हैं। इन समस्त परीक्षाओं में बीस हजार परीक्षार्थी सम्मिलित हुए हैं। ध्यान रहे उक्त परीक्षा बोर्ड सात वर्ष पूर्व ही ५७१ परीक्षार्थियों से आरंभ हुआ था। इसकी सफता का श्रेय पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित प्रशिक्षण-शिविरों को है, जिनमें धर्माध्यापक ट्रेंड होकर गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं का संचालन करते हैं।

मंत्री, परीक्षा बोर्ड

आवश्यक सूचनाएँ

१. श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की शीतकालीन परीक्षा, १९७६ के प्रमाण पत्र संबंधित केन्द्रों को भेजे जा चुके हैं। जिन्हें प्राप्त न हुए हों, वे शीघ्र सूचित करें। ग्रीष्मकालीन परीक्षा का परीक्षाफल शीघ्र भेजा जाएगा तथा प्रमाणपत्र भी यथासमय भेज दिये जायेंगे।

२. बोर्ड की आगामी शीतकालीन परीक्षाएँ जनवरी/फरवरी १९७७ में होंगी। संबंधित केन्द्रों को शीतकालीन १९७७ की परीक्षा में प्रवेश हेतु प्रवेश फार्म भेजे जा रहे हैं। नये केन्द्र जो परीक्षा बोर्ड से संबंध स्थापित करना चाहते हैं, वे पत्र लिखकर प्रवेशफार्म व नियमावली बोर्ड कार्यालय जयपुर से निःशुल्क मँगा लें।

व्यवस्थापक

पाठकों के पत्र

इस शीर्षक के अंतर्गत पाठकों के आवश्यक पत्रों के महत्त्वपूर्ण अंशों को संक्षेप में प्रकाशित किया जावेगा।

सोनगढ़ से श्रीमान् पंडित खीमचंदभाई जेठालाल शेठ लिखते हैं :-

आत्मधर्म हिन्दी जुलाई का अंक प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री सुखशांति में विराजमान हैं। उन्होंने पूरा अंक बांच लिया है। 'अंक बहुत अच्छा निकला है' ऐसा कहकर प्रसन्नता व्यक्त है। दादर (बम्बई) में जो चर्चा हुई थी, वह उन्होंने पूरी बांच ली है। ....लेख, छपाई, टाइप इत्यादि सुंदर हैं।

कोटा से श्रीमान् पंडित युगलकिशोरजी 'युगल' लिखते हैं :-

डाक्टर साहब के सम्पादकत्व में आत्मधर्म का प्रथम अंक मिला। पूज्य गुरुदेव के इन्टरव्यू से श्रीयुत डाक्टर साहब का व्यक्तित्व जन-मानस पर छा गया और भविष्य में आत्मधर्म के कायाकल्प का यह अंक नमूना-सा बन गया। तदर्थ अगणित बधाईयाँ।

गंजबासौदा से श्री पंडित ज्ञानचंद 'स्वतंत्र' लिखते हैं :-

आत्मधर्म का यह अंक छपाई, सफाई, मेकप तथा गेटप आदि सभी दृष्टियों से सुंदर है। आपका 'एक इन्टरव्यू - कानजी स्वामी से' बहुत ही रोचक, आकर्षक तथा नयनाभिराम है। मेरा एक सुझाव है, मुखपृष्ठ पर चित्रों की शृंखला में आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी का चित्र अवश्य और अविलंब छापें।

सोनगढ़ से श्री पंडित अभयकुमारजी जबलपुरवाले लिखते हैं :-

आत्मधर्म का जुलाई अंक देखकर प्रसन्न हो गया। पूज्य गुरुदेव ने भी मुखपृष्ठ आदि तथा इन्टरव्यू की प्रशंसा की है। मुझे तो प्रत्येक पृष्ठ पर आप ही दिखाई दिए।

प्रबंध संपादक की कमल से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें :-

(१) अनेक भाईयों के जुलाई का अंक न मिलने के पत्र प्राप्त हुए हैं। समय पर छप जाने पर भी, विभिन्न परिस्थितियोंवश यह अंक जयपुर से तारीख १२-७-१९७६ को डिस्पैज हो सका है। इस विलंब के लिये क्षमाप्रार्थी हैं।

(२) आत्मधर्म (हिन्दी) के सभी नये-पुराने ग्राहकों को नये नंबर दिये गये हैं। अतः रैपर पर छपा हुआ अपना नया नंबर नोट कर लें। स्थाई सदस्यों के नंबर L.M. (लाइफ मेम्बर) के साथ हैं एवं वार्षिक के सामान्य नंबर हैं। किसी प्रकार का पत्र व्यवहार करते समय कृपया ग्राहक नंबर अवश्य लिखें।

(३) अंक प्राप्त न होने की शिकायत माह की १२वीं तारीख के पश्चात् ही लिखने का कष्ट करें। क्योंकि अंक जयपुर से प्रत्येक माह की पाँचवीं या छठवीं तारीख को डिस्पैच होगा।

(४) समाचार सिर्फ वीतराग-विज्ञानमयी तत्त्वप्रचार से संबंधित ही छापे जाते हैं। अतः कृपया अन्य राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक आदि समाचार प्रकाशनार्थ न भेजें।

आवश्यक सूचना

श्री परमागम मंदिर प्रतिष्ठा महोत्सव, सोनगढ़ का हिसाब बंद किया जा रहा है।

अतः श्री परमागम मंदिर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रसंग पर बोली गई बोलियों आदि की राशि जिन महानुभावों की ओर से बकाया हो, वे अतिशीघ्र ड्राफ्ट या चैक द्वारा भिजवाने का कष्ट करें।

चैक या ड्राफ्ट श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ के नाम पर बनवावों।

– व्यवस्थापक

हमारी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ –

- महावीर वाणी के गूढ़ रहस्य को प्रगट करनेवाले पूज्य कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचनों का 'आत्मधर्म' पत्र द्वारा जन-जन में सम्प्रेषण।
- सोनगढ़ में संपन्न शिविरों द्वारा तैयार किये गये सदाचारी एवं तत्त्वप्रेमी आध्यात्मिक विद्वान।
- स्थान-स्थान पर संपन्न शिविरों द्वारा जैन तत्त्वज्ञान का प्रचार व प्रसार।
- प्रौढ़ों में तत्त्व-प्रचार व सदाचार के लिए गाँव-गाँव में मुमुक्षु मंडलों द्वारा शास्त्र सभाओं का संचालन।
- बालकों में तत्त्व-प्रचार व सदाचार के लिए गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं का संचालन।
- सस्ता सत्साहित्य प्रकाशन एवं वितरण।
- तत्त्व-प्रचार व प्रसार को नियमित करने के लिए वीतराग-विज्ञान परीक्षा बोर्ड का संचालन।
- नवीन वैज्ञानिक धार्मिक पाठ्यक्रम।
- प्रशिक्षण-शिविरों द्वारा प्रशिक्षित धार्मिक अध्यापक।
- तीर्थों की सुरक्षा हेतु सर्व प्रकार का सहयोग।

● श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़

● पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर – ३०२००४

● श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, बम्बई

Reg. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

	रु० पैसे
समयसार	१२-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	४-५०
समयसार प्रवचन भाग २	४-५०
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-००
छहढाला (सचित्र)	१-५०
द्रव्यसंग्रह	१-२०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
बालपोथी भाग १	०-२५
बालपोथी भाग २	०-४०
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	३-००
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००

	रु० पैसे
परमात्म पूजा संग्रह	२-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	५-००
पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
मैं कौन हूँ?	१-००
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य	०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य	०-३०
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
अनेकांत और स्याद्वाद	०-३५
तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
सत्य की खोज (कथानक)	प्रेस में
अपने को पहचानिए	०-५०
पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक और उसकी ग्यारह प्रतिमाएँ	०-३५
अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
सुंदर लेख बालबोध पाठमाला भाग १	०-२५

*** श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)**

*** पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४**